International Journal of Research in Social Sciences and Humanities http://www.ijrssh.com

(IJRSSH) 2017, Vol. No. 7, Issue No. II, Apr-Jun **e-ISSN: 2249-4642, p-ISSN: 2454-4671**

ORIGIN AND DEVELOPMENT OF YOGA IN SANSKRIT LITERATURE

Dr Sita Rathore
Associate Professor, Department of Sanskrit, MMH College, Ghaziabad

संस्कृत साहित्य में योग का उद्भव व विकास

डॉ. सीता राठौर
एसो. प्रो., संस्कृत विभाग, एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद

ABSTRACT

The general meaning of the word Yog is – Addition. But in a broader sense, yoga i.e. addition/matching (of soul and God) is called samadhi and restraint. The importance of yoga is unexampled since ancient times. The entire yoga related literature is contained in Sanskrit itself. Yoga is the way to reach Kaivalya, the retirement of all the sorrows of the seeker. Even in modern era, yoga is the only medium through which healthy benefits and union of the soul with the almighty is possible. Yoga is an invaluable gift given to the world by Sanskrit

प्रस्तावना

योग शब्द 'युज' धातु में घञ् प्रत्यय लगने पर निश्पन्न होता है। योग शब्द का सामान्य अर्थ है–जोड़। परन्तु विस्तृत रुप से योग अर्थात् जोड़/मिलन (आत्मा परमात्मा का) को ही समाधि और संयमन कहा जाता है। प्राचीनकाल से ही योग का महत्त्व अतुलनीय है। योग सम्पूर्ण संबंधी साहित्य संस्कृत में ही निहित है। योग साधक के सभी दुःखों की निवृत्ति कर कैवल्य तक पहुँचाने का मार्ग है। आधुनिक युग में भी योग ही एक ऐसा माध्यम है जिससे स्वास्थ्य लाभ और जीवात्मा का परमात्मा से मिलन संभव है। योग संस्कृत द्वारा विश्व प्रदत्त अमूल्य देन है।

योग के अंग

संस्कृत साहित्य में योग के आठ अंगों का सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङानि।[1]

यम–*सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य ये पंचयम कहे गए हैं। यम निशिद्ध कर्मों में हमारे चित्त की प्रवृति को जाने से रोकते हैं।*

नियम–*शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान से पाँच नियम बताए गए हैं। ये नियम योगी साधक की व्यक्तिगत रुप से उन्नति कर उसे योगसाधना के लिए प्रेरित करते हैं।*

आसन–*षरीर को विभिन्न प्रकार के आकार प्रदान करना आसन कहलाता है अर्थात् लंबे समय तक षरीर को एक ही अवस्था में स्थिर रखना। आसन के बिना योगाभ्यास संभव नहीं है।*

प्राणायाम–*आसन में सिद्धि प्राप्त होने पर ष्वास की तीनों क्रियाओं पूरक, कुंभक एवम् रेचक पर नियन्त्रण करना ही प्राणायाम है।*

प्रत्याहार– *हमारी जो इंद्रिया चित्त को चचल करती हैं, उन इंद्रियों को उनके विशय से विपरित होना प्रत्याहार कहलाता है।*

उपर्युक्त पाँच योग के बहिरंगसाधन कहे जाते हैं।

तीन अंतरंगसाधन

धारणा– *षरीर के बाह्य या आंतरिक देश (स्थान) विशेश में चित्त को बाँधने को या स्थिर करने को धारणा कहा जाता है।*

ध्यान– *जिस देश (स्थान) विशेश पर धारणा की जाती है उस स्थान पर चित्तवृत्ति को समानरुप से निरन्तर बने रहने को ध्यान कहते हैं।*

समाधिः– *निरन्तर अभ्यास से जब ध्यान की अवस्था प्रगाढ़ हो जाती है तो ध्यान समाधि में परिवर्तित हो जाता है।*

योग नाथ सम्प्रदाय में कौल मार्ग

प्राचीनकाल में कौल सम्प्रदाय एक व्यापक और महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय रह चुका है। कौल मार्ग नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित था। मत्स्येन्द्रनाथ और गौरक्षनाथ आदि नाथ सम्प्रदाय के आचार्यों का भी सम्बन्ध कौल मार्ग से था, यह निर्विवाद है।

कौल मार्ग की मुख्य मान्यताएँ

इस मार्ग की मान्यताएँ बड़ी विचित्र हैं जिनको सभी आसानी से नहीं समझ सकते। उनको सम्यक् रुप से न समझने के कारण ही यह कौल मार्ग बहुत काल से आलोचना का विशय रहा है। 'कुल' की उपासना के कारण ही यह कौल मार्ग कहलाता है परमेश्वर की षक्ति का नाम कुल है। 'कुल' उस परमतत्त्व का द्योतक है जो शिव षक्ति आदि समस्त पदार्थों को षासित करता है। यह समस्त विश्व कुल में ही स्थित है और कुल में ही लय प्राप्त करता है। कौल धर्म में पूजा, व्रत, निश्ठा आदि का कोई विशेश नियम नहीं है। ये कहीं शिश्ट दिखाई देते हैं कहीं भ्रश्ट। कहीं भूत–प्रेत कही पिशाच जैसा व्यवहार करते हैं। कानों में कुण्डल, गले में मुण्डमाला, हाथ में मदिरा पात्र, मुख में मदिरा धारण करते हैं। शिव से मिलता जुलता इनका रुप होता है। वाम पार्श्व में रमण कुशला सुन्दरी स्त्री, दक्षिण पार्श्व में मदिरापात्र, सामने सूअर का गर्म मांस और इनके कन्धे पर वीणा होती है। इस प्रकार यह कौल धर्म योगियों के लिए भी अगम्य है।

कौल मार्ग में पंचमकार *–मद्य, मांस, मीन, मुद्रा, मैथुन ये पाँच कौलमार्ग में पंचमकार बताए गए हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है :–*

मद्य*– मद्य का अर्थ बाह्य मदिरा नहीं है अपितु ब्रह्मरन्ध्र से क्षरित होने वाली सुधा मद्य कहलाती है। इसी का पान करने वाला कौल मद्यप है। यह अमृत योगी जिह्वा के द्वारा गले का संयोग करके अर्थात् खेचरी मुद्रा से प्राप्त कर सकता है।*

मांस*– यह मन ही मांस है। पाप और पुण्य पशु हैं। ज्ञानरुपी कृपाण से पाप पुण्यात्मक पशुओं को मारकर निर्मल मन को जो पर–ब्रह्म में लीन कर देता है, वही वस्तुतः मांसाहारी है।*

मीन*–इडा और पिंगला ये दो नाड़िया गंगा और यमुना हैं। श्वास और प्रश्वास दो मत्स्य हैं। प्राणायाम से श्वास और प्रश्वास की गति को रोककर जो साधक सुशुम्ना में प्राण को संचालित करता है वही मत्स्य साधक है।*

मुद्रा*–सत्संग के प्रभाव से षीघ्र मुक्ति का लाभ होता है। असत् पुरूशों के संग का त्याग करना ही मुद्रा है।*

मैथुन*–मैथुन का अर्थ रमण कुशला बाह्य नारी के साथ सम्भोग नहीं है। मैथुन का अर्थ है–सहस्रार स्थित शिव के साथ कुण्डलिनी षक्ति का मिलाना। वहीं वास्तव में मैथुन है। इस मैथुन से जो आनन्द उपलब्ध होता है वह स्त्री सहवास के सुख से षत–कोटि गुणित होता है।*[2]

अन्य दर्शनों में योग*–समस्त आस्तिक और नास्तिक दर्शनों में योगदर्शन का महत्त्व सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया है। अन्य दर्शनों में मोक्षप्राप्ति के उपायों का कथन मात्र किया गया है परन्तु योग में उन्हें क्रियात्मक रूप दिया गया है। बृह्दारण्यक उपनिशद् में तो स्पश्ट रुप से योग का महत्त्व स्वीकार किया गया है। मन को समाहित कराने का उपाय योग दर्शन ही बताता है।*

गीता में तो सांख्य एवं योग दोनों को एक ही बताया गया है :–

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न मनीषिणः।
यत्सांख्यैर्प्राप्यते स्थानं तत्योगैरभिगम्यते।।[3]

योग एवं उपनिषद

योगदर्शन में प्रतिपादित अश्टांगयोग उपनिशदों में समग्ररुप में प्राप्त हो जाता है। यह बात अलग है कि उपनिशदों में इस प्रकार क्रमिक एवं सुसम्बद्ध योग प्रक्रिया उपलब्ध नहीं है। जैसी कि योगसूत्रों में योगदर्शन का लक्ष्य है– चित्तवृत्ति के निरोध द्वारा द्रश्टा की स्वरूप स्थिति यह आत्म दर्शन की, समाधि की स्थिति है। उपनिशदों का लक्ष्य भी आत्मदर्शन है भले ही आत्म षब्द में आत्मा, परमात्मा, जीवात्मा षब्दों का ज्ञान होता है। उपनिशदों में आत्मदर्शन एवं परमात्मदर्शन दोनों ही साधक को होते हैं। उपनिशदों में साधक के लिए ज्ञान मार्ग को प्रतिपादित किया गया है जबकि योगदर्शनकार योग की एक सुसम्बद्ध प्रणाली के द्वारा कार्य को पूर्ण करते हैं। याज्ञवल्क्य तो यही कहते हैं कि योग के द्वारा आत्मदर्शन करना ही परम धर्म है।[4] *प्रणव का अर्थ 'ओउम्' ही क्यों? एक प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रणव का अर्थ ओउम् ही क्यों लिया जाता है। 'उमा' या 'ऐं' क्यों नहीं लिया जाता जबकि उमा एवं ऐं में भी वही मात्राएँ हैं जो*

ओउम् में हैं। इस पर विचार करना आवश्यक है। पतंजलि ने ''तस्य वाचकः प्रणव'' कहा है। तस्य वाचकः ओंकार नहीं कहा। इसके पीछे कोई कारण तो अवश्य होगा। वस्तुतः प्रणव षब्द ओंकार का संक्षिप्त विशेशण है। जो ओंकार के अर्थ की विशेशता को द्योतित करता है।

'प्रकर्षेण नूयते स्तूयते इति प्रणवः'[5]

अर्थात् ओंकार षब्द ईश्वर की उपासना के लिए बार–बार स्तुत एवं पठित किया जाता है। अतः ओंकार प्रणव कहलाता है। तीन मात्राओं में जप करने से पाप से सर्वथा छूटकर ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है।[6]

योग में कर्म सिद्धान्त

योगशास्त्र में कर्म सिद्धान्तों पर विधिवत् विचार प्रस्तुत किया गया है। अविद्या, अस्मिता राग, द्वेश इत्यादि के कारण जो कर्म किए जाते हैं उनसे जीव की बुद्धि में संस्कार पड़ जाते हैं। ये कर्म तीन प्रकार के बताए गए हैं :–

***संचित कर्म**–जिन कर्मों का पूर्व जन्मों में संचय किया गया है वे कर्म संचित कर्म कहलाते हैं। इनका फल नहीं मिलता।*

***प्रारब्ध कर्म**–ऐसे संचित हुए कर्म जिनका फल मिलना प्रारंभ हो गया है, प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं।*

***क्रियामाण कर्म**–वर्तमान समय में जो कर्म किए जा रहे हैं वे क्रियामाण कर्म कहलाते हैं।*

योग का लक्ष्य

योग का लक्ष्य है हमें षारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक रुपा से सामंजस्य स्थापित कर कैवल्य की प्राप्ति करवाना। अपने स्वरुप में ही प्रतिश्ठित चिति षक्ति को कैवल्य कहा जाता है। जैसे स्फटिकमणि का उपरजक जब हट गया हो तो वह स्फटिक अपने वास्तविक स्वरुप में प्रतिश्ठित दिखायी पड़ने लगता है। वस्तुतः पहले की स्थिति से उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। इसी प्रकार उस पुरुश में कभी कोई नयी बात कैवल्य से नहीं होता। वह जैसे का तैसा रहता है। उसमें उपचरित होने वाली उपाधि ही हट जाती है। इस उपाधि का विगल नही 'कैवल्य' है।

उपसंहार

कहा जा सकता है कि संस्कृत में अपार साहित्य समाहित हुआ है। योग संस्कृत साहित्य की अतुलनीय निधि है। यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि संस्कृत न होती तो आज योग का भी अस्तित्व नहीं होता।

कह सकते हैं कि–

योग जीवन का सार है
इसके बिना जीवन निराधार है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. *पातंजलयोगदर्शनम्, पृ0 37*
2. *पातंजल योग विमर्श, विजपाल षास्त्री, पृ026*
3. *संस्कृत साहित्य का बृहद इतिहास, डॉ0 पुश्पा गुप्ता, पृ0 484*
4. *उपनिशदों में योग विद्या, डॉ0 रघुवीर वेदालंकार, वेदाचार्य, पृ0 2*
5. *पातंजल योग एवं नाथ योग, डॉ0 सुरक्षित गोस्वामी, पृ0 240*
6. *उपनिशदों में योग विद्या, डॉ0 रघुवीर वेदालंकार, वेदाचार्य, पृ0 88*

REFERENCES

1. Patanjalyogdarshanam, pg 37
2. Patanjal Yog Vimarsh, Vijpal Shastri, pg 26
3. Sanskrit Sahitya ka Vrihad Itihaas, Dr Pushpa Gupta, pg 484
4. Upnishadon me Yog Vidya, Dr Raghuveer Vedalankaar, Vedacharya, pg 2
5. Patanjal Yog Evum Nath Yog, Dr Surakshit Goswami, pg 240
6. Upnishadon me Yog Vidya, Dr Raguveer Vedalankar, Vedacharya, pg 88